इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा में स्त्री चरित्र की बदलती छबि

(दुकान, धकधक, शर्माजी की बेटी, भक्षक, दो पत्ती के विशेष सन्दर्भ में)

- प्रोफेसर बळीराम धापसे

अध्यक्ष एवं शोधनिदेशक,

हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र,

विनायकराव पाटील महाविद्यालय,

तह.वैजापुर,जि.छत्रपति संभाजी नगर,

(औरंगाबाद, महा.) 423701

बीज शब्द - सिनेमा, समाज, स्त्री, चरित्र, छबि, फिल्म, पर्दा, कलाकार, पुरुष, स्व, व्यवसाय, मनोरंजन, बाजार,बदलाव, मानसिकता

स्त्री हमेशा से ही सिनेमा के केंद्र में रही है। सिनेमा स्त्री के इर्द-गिर्द ही कथाओं को बुनता रहा है। सिनेमा की हर विधा में अर्थात् ऐतिहासिक, पौराणिक, सामाजिक अथवा आंचलिक सिनेमा में स्त्री की समस्याएँ, स्त्री-पुरुष संबंध, स्त्री की यौनिकता, स्त्री की शृंगारिक अभिव्यक्तियाँ, स्त्री का देह सौष्ठव, स्त्री सौंदर्य की सम्मोहक प्रस्तुति आदि सिनेमा के आकर्षक तत्व रहे हैं। विडम्बना देखिए, हिंदी फिल्मों की शुरुआत बिना स्त्री के साथ होती हैं और आज स्थिति ऐसी हैं कि बिना स्त्री के फिल्म बन ही नहीं सकती । **सिनेमा में स्त्री की प्रस्तुति पुरुष की दृष्टि से ही होती रही है। पुरुषों के चाक्षुष भोग के बिम्ब के रूप में उसे बनाए रखा ।** राज कपूर और फिरोज खान, एकता कपूर,करण जौहर की फिल्मों की सफलता के पीछे यही कहानी हैं ।

पहले काफी हद तक फ़िल्में पुरुष वर्चस्व को दर्शाती थीं, सिंदूर, करवाचौथ, मंगलसूत्र, 'एक चुटकी सिंदूर की कीमत तुम क्या जानो रमेश बाबू', परम्परा के नाम पर वह घूंट-घूंट कर जी रही स्त्री की छवि सब देखना पसंद करते हैं| "न जाओ सैया छुडाके बैयां कसम तुम्हारी मैं रो पड़ूँगी".....गाती हुई, "तुम्हीं मेरे मंदिर तुम्ही मेरी पूजा तुम्हीं देवता", मेरा पति मेरा देवता हैं .....आदि दृश्य इसी परिप्रेक्ष्य में थें | **इस समाज में स्त्री की सृजन शक्ति को संकुचित करके उसके मन-मस्तिष्क में जीवन की सार्थकता के मायने 'माँ', आदर्श पत्नी बनने तक सीमित कर देने वाला रूढ़िवादी समाज स्त्री को कोई अन्य भूमिका में केवल अस्थायी रूप से देखने का ही आदी हैं। हिन्दी सिनेमा में भी पारिवारिक संबंधों के रूप में उसका यही संबंध उसके आँचल से बाँध दिया गया परंतु इस तथाकथित आदर्श मूर्ति को तोड़कर उसे पुरुष के सोच से भी और भी ज्यादा सुन्दर रूप में प्रस्तुत करने में सफल हो रही हैं ।**1

स्त्री जीवन की सच्चाइयों को सामने लाने में समानांतर सिनेमा एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। सिनेमा की इस धारा में स्त्री की वैयक्तिक जटिलता, त्रासदी, अंतरद्वंद्व और मुक्ति से जुड़ी अनेक अंदरूनी बातों से समाज को अवगत कराते हुए समाज से इन्हें निकाल कर विरेचन के माध्यम से समाज के विशुद्धिकरणकारी प्रक्रिया में समानांतर सिनेमा अपना योगदान देता आया है।2

इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा के समाज चित्रण के परिप्रेक्ष्य में स्त्री चरित्र की बदलती छबि के विशेष सन्दर्भ में कुछ प्रतिनिधिक फ़िल्में एवं सिनेकर्मी इस प्रकार हैं -

फ़िल्में - हरी भरी, पाँच, लज्जा, कांची, कहानी - 1/2, चांदनी बार, रिवाल्वर रानी, मर्दानी - 1/2, जुबैदा, आजा नच ले, डेढ़ इश्किया, हैदर, की एंड का, हाईवे, लक्ष्मी, लागा चुनरी में दाग, गुलाब गैंग, लिपस्टिक अंडर माय बुरखा, क्वीन, सुपर नानी, चीनी कम, रंगरसिया, मेरी काम, जज्बा, अस्तित्व, फिज़ा, गजगामिनी, क्या कहना, पार्क एव्हेन्यु, जब वू मेट, मणिकर्णिका, अनुराधा, एन एच 10, रात गई बात गई, फैंटम, टर्निंग 30, निशब्द, अकिरा,

लव सेक्स और धोखा, फैशन, इंग्लिश विन्ग्लिश, सात खून माफ, हिरोइन, नील बटे सन्नाटा, बेबी जासूस, लाइफ इन अ मेट्रो, इश्कियां, बीए पास, बाला, शुद्ध देशी रोमांस, अइय्या, डोर, लव आज कल, संदीप एंड पिंकी फरार, डरटी पिक्चर, दम लगा के हैशा, बेगम जान, पार्चेड, सांड की आँख, मार्गरिटा विद अ स्टरों, पिंक, मोम, थप्पड़, बदला, त्रिभंगा, जजमेंटल है क्या, पिंजर, डियर जिन्दगी, शकुन्तला देवी, पीकू, पहेली, रश्मि रोकेट, चमेली, नूर, नीरजा, शादी में जरुर आना, दबंग, अनारकली ऑफ़ आरा, पेज थ्री, धनक, चक्रव्यूह, गंगुबाई काठियावाडी, दंगल, नो वन किल्ड जेसिका, रॉकस्टार, शॉर्ट्स, छपाक, धाकड़, कलंक, चेहरे, कॉर्पोरेट, चक दे इंडिया, गिल्टी,पंगा, तनु वेड्स मनु रिटर्न्स, बुलबुल, बबली बोउंसर, अपूर्वा, मिस चटर्जी वर्सेस नोर्वे स्त्री 1/2, पगलैट, क्रू, लापता लेडिज, मिसेज, दुकान, धकधक, शर्माजी की बेटी, भक्षक, दो पत्ती आदि ।

सिनेकर्मी - सत्यजीत रे, मृणाल सेन, महबूब खान, ऋषिकेश मुखर्जी, महेश भट्ट, अमोल पालेकर, विमल राय, गुरु दत्त, राज कपूर, बी आर चोपड़ा, श्याम बेनेगल, शुजित सरकार,आर.बालकृष्णन,आर.बाल्की आदि ।

कल्पना लाजमी, मीरा नायर, दीपा मेहता, तनूजा चंदा, फराह खान, पूजा भट्ट, जोया अखतर, मेघना गुलजार, लीना यादव, रीमा कागती, किरण राव खान, अनुषा रिज़वी, अश्विनी अय्यर, गौरी शिंदे, अन्विता दत्त, गरिमा वहाल, तापसी पन्नू, ज्योत्सना नाथ, गौरी खान, कनिका ढिल्लों, कृति सनोन, ताहिरा कश्यप खुराना, आरती कडव, स्मिता बालिगा, ज्योति देशपांडे, अपर्णा सेन,अरुणा राजे,गुरिन्दर चड्ढा, नीता मेहता आदि ।

वर्तमान हिंदी फिल्मों में महिलाओं की भूमिका को देखा जाए तो सिनेमा के शुरूआती दौर की फिल्मों की बनिस्बत आज उनका रूप तथा भूमिका वाकई मुखर हुई है। इसका उदाहरण हम इक्कीसवीं सदी की उपर्युक्त फिल्म सूची में देख सकते हैं। दो हजार के बाद की फिल्मों में महिलाओं के जीवन की प्रस्तुति में जिस तरह का बदलाव हुआ, वह तमाम विवादों के बावजूद स्वागत योग्य है।

तकनीक और संसाधनों ने उनके सपनों के सामने कई विकल्प रख दिए हैं। सिनेमा में स्त्री शोषण की एक बहुत बड़ी वजह उसका सिर्फ नायिका होना था और यह कि सिनेमा बनाना सिर्फ पैसे वालों का काम है, लेकिन अब ऐसा नहीं। कुछ वर्षों में स्वयं स्त्रियों ने निर्देशन और लेखन की भी बागडोर संभाली है । उपर्युक्त सूची के संवेदनशील स्त्री / पुरुष फिल्मकारों ने महिलाओं की आंतरिक समस्याओं को अभिव्यक्ति दी है। कई प्रतिभाशाली फिल्म निर्माताओं ने आग्रहपूर्वक और सम्मानजनक यथार्थवादी बन कर अपनी फिल्मो में महिलाओं को सही और मजबूत पक्ष चित्रित करने की कोशिश की है।

शुरूआती दौर के सिनेमा में जहां स्त्री का चेहरा केन्द्र में होता था वही भूमंडलीकरण के दौर के सिनेमा के केन्द्र में स्त्री की देह है। यह परिवर्तन पूंजीवाद की देन है, पूंजीवाद ने स्त्री की देह के प्रदर्शन को स्त्री-मुक्ति का पर्याय बनाने की कोशिश की है। जिसमें वह काफी हद तक सफल भी रहा है। परंतु वास्तव में यह स्त्री की सामंती जकड़न से मुक्ति का हवाला

देकर बाजार के हवाले करने की कवायद भर है। इस विषय पर 'कल्पना लाजमी' का कहना है- "महिलाओं के मुद्दों का भविष्य फिल्मों में बहुत संघर्ष भरा है। बाजार का पूरा ढांचा ही ऐसा है कि यथार्थवादी फिल्में बनाना बहुत मुश्किल है।"

आज नायिका और खलनायिका के बीच सिर्फ कपड़ों का ही नहीं, मानसिकता का भी अंतर मिट गया है । आज कम कपड़ों में आइटम सॉग करने के लिये हेलेन और बिंदु की तरह सिर्फ़ राखी सावंत या मलाइका खान की भी ज़रूरत नहीं रही । उसके लिये करीना कपूर, ऐश्वर्या राय, कैटरीना कैफ़ या विद्या बालन तक, जो अपनी शर्तों पर किसी भी रोल को अस्वीकार करने की कूवत रखती हैं, उत्तेजक गानों तक के लिये अपने को सहर्ष प्रस्तुत कर देती हैं ।

कुछ दशक पहले क्या हमने कभी सोचा था कि "अजीब दास्तां है ये...." और " दिल एक मंदिर है ...." जैसे गीत गाती स्त्रियों के देश में कभी हाइवे, क्वीन, पिंक और पार्चेड जैसी फ़िल्में भी बनेंगी ? बेशक भारतीय सिनेमा में यह एक बड़ा बदलाव आया है । यह दौर निश्चित रूप से नायिकाओं की स्टीरियोटाइप इमेज से बाहर स्त्री की अस्मिता को पहचानने और उसकी आकांक्षा को तरजीह देने का है। हिन्दुस्तानी जनता द्वारा इस छवि को स्वीकार्यता देना भारतीय सिनेमा के लिये गर्व की बात है ।

आर्ट सिनेमा, वैकल्पिक सिनेमा, स्वतंत्र सिनेमा आदि नामों से जाना जाने वाला कला सिनेमा हिन्दी का वह सिनेमा है जिसने स्त्री को एक व्यक्ति के रूप समाज से परिचित कराने में अपूर्व सफलता पायी है। इन फिल्मों में स्त्री की मानसिकता का प्रत्यक्षीकरण किया हैं उसे एक पहचान देकर उसकी अहमियत के प्रति उसे जागरूक किया हैं । **3**

आज हिंदी फिल्मों में उभरती नयी नायिकाओं के किरदार को और अपनी ज़मीन पहचानती लड़कियों की अलग किस्म की मानसिकता को आम दर्शक अपनी स्वीकृति देता है ! जैसे-जैसे कहानियाँ नयी स्त्री की तलाश करती जा रही हैं, वैसे-वैसे नायिकाएँ बदल रही हैं । जैसे-जैसे स्त्री की उपस्थिति और उसकी भूमिकाओं का मूल्यांकन होता जाएगा, वैसे-वैसे नयी स्त्रियाँ आती जाएंगी और नायिकाओं का चेहरा और चरित्र बदलता जाएगा। इसकी आज सख्त ज़रूरत भी है । हिन्दी सिनेमा के प्रारंभिक दौर में जहाँ बालविवाह, दहेज, विधवा दुर्दशा, स्त्री शोषण, तलाक जैसे विषय हुआ करते थे समाज की मानसिकता और परिस्थितियों के अनुसार आज नौकरी, लैंगिक स्वतंत्रता जैसे नवीन विषय लिए जा रहे हैं। आज की नायिका बेबाक, साहसी और चमत्कृत कर देने वाली है। जो प्रारंभिक दौर की देविका रानी, गौहर, जुबैदा, कानन देवी, ललिता पवार आदि सिने अभिनेत्रियों के नवीन संस्करण के रूप में हमारे सामने हैं।**4** दरअसल नये माहौल में स्त्री के बदलते चेहरे को पहचानने की कोशिश की जा रही है और इसमें अनंत संभावनाएं हैं, इसमें कोई संदेह नहीं ।

निष्कर्ष :-

1. यदि ग़ौर से देखें तो अधिकांश हिंदी फ़िल्में पुरुष वर्चस्ववादी ग्रंथि से ग्रस्त हैं।

2. हिंदी सिनेमा में शुरू से स्त्री को एक मनोरंजन की वस्तु के रूप में देखा गया हैं, फिल्मों में औरतों को सेलेब्रेट, प्रदर्शन की वस्तु के रूप में किया जाता रहा है । वैसे यह स्थिति इक्कीसवीं सदी में भी कई सिनेमाओं में बरक़रार हैं ।

3. मुखरता / बोल्डनेस के मामले में हिंदी सिनेमा में स्त्री चरित्र काफी अग्रसर हो गया हैं ।

4. हिंदी फिल्म जगत में इक्कीसवीं सदी में नारी का रूप बदल चुका है। नारी प्रधान, उनकी समस्याएं, समाज में हुए बदलाव, उसकी सफलता, उसकी सच्ची घटनाएं आदि विषयों पर फिल्में बनने लगी है।

5. भारतीय फ़िल्मों में प्रारम्भ से ही क्षेत्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर नारीवादी विषयों को प्रस्तुत किया गया हैं । सिनेमा के हर दौर में स्त्री प्रमुख रूप से कथ्य के केंद्र में रही है।

6. इक्कीसवीं सदी की ये फिल्में इस बात को प्रमाणित करती है कि भूमंडलीकरण के दौर में भी नारी की विडम्बनाओं, आकांक्षाओं, उद्देश्यों और समस्याओं पर फिल्में बनना जारी हैं।

7. हिंदी फ़िल्मों में स्त्री जीवन के सुखमय व दुखमय पक्षों का चित्रण समान रूप से हुआ है।

8. सिनेमा में स्त्री चरित्र के त्याग, अनुराग, मातृत्व, प्रेम, समर्पण जैसे गुणों के महिमामंडित स्वरूप को प्रमुख रूप से प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही दूसरी ओर उसे दुश्चरित्र, लोभी, षडयंत्रकारी, उग्र, क्रोधी, प्रतिहिंसात्मक, अनैतिक, देहवादी, पुरुषलोलुप, कामुक, और दुस्साहसी खलनायिका के रूप में भी चित्रित किया गया। दोनों ही चित्रणों में अतिशयोक्ति और काल्पनिक तत्व शामिल हैं।

9. इक्कीसवीं सदी की फिल्मों में स्त्रियों के प्रश्नों को काफी प्राथमिकता मिली हैं ।

10. इक्कीसवीं सदी में परंपरागत नारी विषयक भावनाओं को छेदनेवाले विषयों पर काफी फिल्में बनी हैं । जहाँ नारी प्रतिमा कोमल नहीं, पुरुष से अधिक सामर्थ्यशाली, आक्रमक, परिवारिक जिम्मेदारी उठानेवाली है।

वैसे स्त्री का अपना एक अस्तित्व, वजूद है पर अगर मां का संघर्ष देखना है तो नील बटे सन्नाटा, जज्बा, पा, क्या कहना, चांदनी बार, बहन का संघर्ष देखना है तो नो वन किल्ड जेसिका, पत्नी का संघर्ष देखना है तो हाईवे, कहानी, पा, डोर, दादी का संघर्ष देखना है तो सांड की आँख और स्त्री का संघर्ष देखना है तो पंगा, अकिरा, लिपस्टिक अंडर माय बुरखा, क्वीन, चीनी कम, मेरी काम, थप्पड़, बुलबुल, अनारकली ऑफ़ आरा और बेटी का संघर्ष देखना है तो पीकू, नीरजा, क्या कहना, दंगल और उसका बोल्डनेस देखना है तो चेहरे, लस्ट स्टोरीज, त्रिभंगा, पार्चेड, रंगरसिया, मार्गरिटा विद अ स्टरों, क्रू, लापता लेडिज, पगलैट, बबली बाउन्सर, अपूर्वा, मिस चटर्जी वर्सेस नोर्वे आदि फिल्मों को देख सकते हैं ।

***दुकान* - सरोगसी जैसे संवेदनशील मुद्दे पर बनी इस फिल्म की** अहमदाबाद में एक विशेष स्क्रीनिंग आयोजित की गई थीं और 300 से अधिक सरोगेट्स को आमंत्रित किया गया था । कमर्शियल सरोगेसी के सभी पहलुओं को संतुलित तरीके से यह फिल्म उठाती हैं । बचपन के

एक हादसे की वजह से जैस्मिन को बच्चे पसंद नहीं हैं, लेकिन जरूरत पड़ने पर पैसों की खातिर विधवा होने के बावजूद बच्चा मशीन यानी सरोगेट मां बन जाती है। दिक्कत तब शुरू होती है, जब अपने पेट में पल रहे बच्चे से उसे लगाव हो जाता है और वह उसे लेकर भाग जाती है। अब इस बच्चे पर किसका हक है, किराए की कोख का सहारा लेने वाले का या उसे जन्म देने वाली जैस्मिन का?

धक धक - चार महिलाएँ आत्म-खोज की यात्रा पर अपनी बाइक पर दुनिया के सबसे ऊँचे मोटरेबल दर्रे खार्दुन्गला की सड़क यात्रा पर निकलती हैं। वे अपनी मोटरसाइकिलों को बड़े पंखों वाले पक्षियों की तरह हवा के झोंके में ले जाती हैं। वे अपने जीवन की सीमाओं से परे और स्वतंत्रता की ऊंचाइयों तक जाती हैं।फिल्म में एक महिला बाइकर गिरोह बनाकर इसे एक कदम आगे बढ़ाया है। यह यात्रा एक अविस्मरणीय तीर्थयात्रा में बदल जाती है यह एक ऐसी दुनिया है जहाँ माही, उज्मा, स्काई और मंजरी के परीक्षण और क्लेश सभी एक ही विषय पर केंद्रित हैं - एक पूर्वाग्रही और शिकारी पितृसत्तात्मक समाज में महिला होने का अनुभव। अलग-अलग जीवन शैली से बहुत अलग महिलाएं। परेशानियों से भरा अतीत। संघर्षपूर्ण वर्तमान। सभी एक रास्ता तलाश रहे हैं, आगे बढ़ने का रास्ता। रास्ते में धक्के। और सभी बन्धनों का टूटना।

शर्माजी की बेटी - अपने प्रेमी और प्यार को छोड़कर करियर को सर्वोच्च प्राथमिकता देनेवाली एक लड़की, 14 साल की दो लडकियों की मासिक धर्म और समलैंगिकता को सामान्य बनाने की कोशिश स्त्री की छबि को अलग ऊँचाइयों पर ले जाती हैं । आत्म-खोज की यात्रा पर निकली एक गृहिणी के संघर्ष और अपने मनपसंद काम पढ़ाने साथ ही अर्थार्जन की इच्छा रखनेवाली एक मध्यवर्गीय स्त्री के संघर्ष को इसमें दर्शाया हैं ।

भक्षक - यह कहानी एक जुझारू महिला पत्रकार की है जो मुन्नवरपुर के एक आश्रय गृह में एक काले रहस्य को उजागर करती है जहाँ युवा लड़कियों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है। अन्याय के खिलाफ खड़े होने और सही के लिए लड़ने के महत्व पर स्त्री चरित्र के माध्यम से प्रकाश डालती है।

दो पत्ती - घरेलू हिंसा का विरोध करती इस फिल्म की नायिका का एक वाक्य ही पूरे फिल्म की जान हैं - मार जब किसी स्त्री पर पड़ती हैं तो उसकी तकलीफ सिर्फ उसको ही नहीं होती, अप्रत्यक्ष रूप से उसका खामियाजा उसके पूरे परिवार, खासकर छोटे बच्चे साथ ही पूरे नस्ल को भुगतना पड़ता हैं ।

फिल्मों के ट्रेलर

संदर्भ :-

1. *भारतीय सिनेमा-विचारों का लोकतंत्र और स्त्री, संपादक मनीष कुमार मिश्रा, गजेन्द्र भारद्वाज, आलेख - हिंदी सिनेमा की पारिवारिक फिल्मों में नारी के विविध रूप एवं पारिवारिक सम्बन्ध, गजेन्द्र भारद्वाज, कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रसं 2019, पृ.167,*

2. *भारतीय सिनेमा-विचारों का लोकतंत्र और स्त्री, संपादक मनीष कुमार मिश्रा, सह-संपादक शांभवी शुक्ला गजेन्द्र भारद्वाज, आलेख - स्त्रीवादी समानांतर फिल्मों में स्त्री की मानसिकता, डॉ. अर्जुन सिंह बघेल कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रसं 2019, पृ.24,*
3. *वही, पृ.29*
4. *भारतीय सिनेमा-विचारों का लोकतंत्र और स्त्री, संपादक मनीष कुमार मिश्रा, सह-संपादक शांभवी शुक्ला गजेन्द्र भारद्वाज, आलेख - भारतीय सिनेमा के प्रारंभिक दौर की फिल्मों में स्त्री की दिशा और दशा, डॉ. सियाशरण ज्योतिषि, कनिष्क पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रसं 2019, पृ.66*

सहायक सन्दर्भ :-

1. शहर और सिनेमा: वाया दिल्ली; मिहिर पंड्या; वाणी प्रकाशन; प्रथम संस्करण 2011 आवारा हूँ- ब्लॉग
2. सिनेमा और संस्कृति, डॉ. राही मासूम रजा; संपादन एवं संकलन प्रो. कुंवरपाल सिंह; वाणी प्रकाशन,2011
3. भारतीय सिने सिद्धान्त; डॉ. अनुपम ओझा; पहली आ. 2009 राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
4. सिनेमा: फिल्मों में साहित्य गूंथने की कला का जानकार रितुपर्णो घोष; निकिता जैन, रविवार ,5.10.2014, 5. अपनी माटी संस्थान, चित्तौड़गढ़, त्रैमासिक ई-पत्रिका
6. हिंदी सिनेमा बीसवीं से इक्कीसवीं सदी तक; सत्यजीत रे, प्रल्हाद अग्रवाल, साहित्य भंडार, इलाहबाद 2099
7. हिंदी समय वेबसाइट- महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय वर्धा;
8. सिनेमा, साहित्य और हिंदी; दैनिक जागरण; 22 जुलाई 2016
9. साहित्य और सिनेमा: भूमिकाओं का उलटफेर; दैनिक भास्कर 17 मई 2016
10. साहित्य और सिनेमा; दैनिक जागरण पत्रिका; डॉ पुनीत बिसारिया 16 जून 2015
11. पारख, जे. (2011). भूमंडलीकरण के दौर में. समयांतर. फरवरी, पृ.70
12. पारख, जवरीमल्ल, जनसंचार माध्यमों का सामाजिक चरित्र 2006, अनामिका पब्लिशर्स.2006. पृ.172
13. पारख, जवरीमल्ल, हिन्दी सिनेमा का समाजशास्त्र, ग्रंथ शिल्पी, दिल्ली, पृ.173
14. 27 नवंबर 2013 को द्वारा दिया गया जस्टिस सुनंदा भंडारे स्मृति व्याख्यान, 'रिप्रेजेंटेशन ऑफ वीमेन इन
15. इडियन सिनेमा एंड बियोंड' (भारतीय सिनेमा और उस से परे महिलाओं का निरूपण), अश्विन देवासुन्दरम
16. नीरज दुबे. फरवरी 15, 2001, सिनेमा, संस्कृति और नारी
17. भारतीय सिनेमा में स्त्री विमर्श, तेजस पूनियां https://hastakshep.com/news-2/entertainment-and-bollywood/women-in-indian-cinema/cid3256887.htm
18. हिंदी सिनेमा में स्त्री विमर्श का स्वरूप, डॉ. एम. वेंकटेश्वर http://m.sahityakunj.net/entries/view/hindi-cinema-mein-stri-vimarsh-kaa-swaroop
19. हिंदी सिनेमा में स्त्री की बदलती छवि, डॉ. कल्पना गवली www. http://amstelganga.org
20. दैनिक दिव्य मराठी-रविवार में प्रकाशित रेखा देशपांडे के लेख
21. फिल्मों में 'महिलाओं की स्थिति', अमर उजाला 18 अगस्त, 2013
22. अपनी माटी पत्रिका, अक्टूबर-दिसम्बर 2014; अंक
23. हिंदी सिनेमा को महिलाओं ने दी अलग पहचान, हिंदी न्यूज़, गुरूवार 7 मार्च, 2013
24. बदलती छवि का पर्दा, प्रतीक्षा पांडेय, जनसत्ता नवंबर 25, 2015
25. भारतीय सिनेमा की नयी स्त्री, यशवनी पांडेय www.humrang.com
26. आजकल पत्रिका, मई, 2014 अंक
27. महिला विकास और सशक्तिकरण, प्रज्ञा शर्मा, आविष्कार पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, जयपुर
28. सिनेमा और समाज, विजय कुमार अग्रवाल, सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, 1993

सारांश

इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा में स्त्री चरित्र की बदलती छबि

(दुकान, धकधक, शर्माजी की बेटी, भक्षक, दो पत्ती के विशेष सन्दर्भ में)

- प्रोफेसर बळीराम धापसे
अध्यक्ष एवं शोधनिदेशक,
हिंदी विभाग एवं अनुसंधान केंद्र,
विनायकराव पाटील महाविद्यालय,
तह.वैजापुर,जि.छत्रपति संभाजी नगर,
(औरंगाबाद, महा.) 423701

बीज शब्द - सिनेमा, समाज, स्त्री, चरित्र, छबि, फिल्म, पर्दा, कलाकार, पुरुष, स्व, व्यवसाय, मनोरंजन, बाजार,बदलाव, मानसिकता

भारतीय सिनेमा लंबे समय तक पुरुष वर्चस्व का सिनेमा रहा है । निर्माता से दर्शक तक यहां पुरुष की केन्द्रीयता रही है और ऐसे में जाहिर है पुरुष को एक सहचरी ही चाहिए, स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं । यदि हम मुख्यधारा के हिंदी सिनेमा की बात करें तो शुरुआती दौर में महिलाओं को बहुत ही पारंपरिक एवं घरेलू रूप में प्रस्तुत किया। पर इक्कीसवीं सदी के हिंदी सिनेमा में स्त्री चरित्र की छबि काफी आधुनिक और व्यावसायिक हुई हैं ।

वैसे स्त्री का अपना एक अस्तित्व, वजूद है पर अगर मां का संघर्ष देखना है तो नील बटे सन्नाटा, जज्बा, पा, क्या कहना, चांदनी बार, बहन का संघर्ष देखना है तो नो वन किल्ड जेसिका, पत्नी का संघर्ष देखना है तो हाईवे, कहानी, पा, डोर, दादी का संघर्ष देखना है तो सांड की आँख और स्त्री का संघर्ष देखना है तो पंगा, अकिरा, जज्बा, लिपस्टिक अंडर माय बुरखा, क्वीन, चीनी कम, मेरी काम, थप्पड़, अनारकली ऑफ़ आरा और बेटी का संघर्ष देखना है तो पीकू, नीरजा, क्या कहना, दंगल और उसका बोल्डनेस देखना है तो चेहरे, लस्ट स्टोरीज, त्रिभंगा, पार्चेड, रंगरसिया, मार्गरिटा विद अ स्टरों, क्रू, लापता लेडिज, पगलैट, बबली बाउन्सर, अपूर्वा, मिस चटर्जी वर्सेस नोर्वे, दुकान, धकधक, शर्माजी की बेटी, भक्षक, दो पत्ती आदि फिल्मों को देख सकते हैं ।

हिन्दी सिनेमा के प्रारंभिक दौर में जहाँ बालविवाह, दहेज, विधवा दुर्दशा, स्त्री शोषण, तलाक जैसे विषय हुआ करते थे समाज की मानसिकता और परिस्थितियों के अनुसार आज नौकरी, लैंगिक स्वतंत्रता जैसे नवीन विषय लिए जा रहे हैं। आज की नायिका बेबाक, साहसी और चमत्कृत कर देने वाली है। जो प्रारंभिक दौर की देविका रानी, गौहर, जुबैदा, कानन देवी, ललिता पवार आदि सिने अभिनेत्रियों के नवीन संस्करण के रूप में हमारे सामने हैं। दरअसल नये माहौल में स्त्री के बदलते चेहरे को पहचानने की कोशिश की जा रही है और इसमें अनंत संभावनाएं हैं, इसमें कोई संदेह नहीं ।